

पाणिनीय व्याकरण की आधुनिक भाषाविज्ञान में प्रासंगिकता: एक विश्लेषणात्मक साहित्यिक शोध-अध्ययन

वीना रानी, सहायक प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, हिसार, हरियाणा

सार (Abstract)

पाणिनि की *अष्टाध्यायी* विश्व की सबसे प्राचीन उपलब्ध औपचारिक भाषा-वर्णन-प्रणालियों में गिनी जाती है। यह अध्ययन विश्लेषणात्मक साहित्यिक पद्धति से यह जाँचता है कि पाणिनीय व्याकरण आधुनिक भाषाविज्ञान की किन शाखाओं (स्वनविज्ञान, रूपविज्ञान, वाक्यविज्ञान, अर्थविज्ञान, संगणकीय भाषाविज्ञान और भाषा-शिक्षण) में आज भी प्रासंगिक है। संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी में उपलब्ध लगभग साठ प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। निष्कर्ष यह है कि पाणिनीय प्रणाली आधुनिक भाषाविज्ञान की "पूर्वज" मात्र नहीं, एक सक्रिय सैद्धांतिक साझेदार भी है। उसके नियम-क्रम, संज्ञा-प्रत्याहार की मितव्ययिता, कारक-सिद्धांत और सूत्र-संघर्ष-समाधान की युक्तियाँ आज संगणकीय प्रक्रमण, निर्भरता-व्याकरण और संज्ञानात्मक भाषा-मॉडलों में उपयोगी सिद्ध हो रही हैं। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि यह प्रासंगिकता असीमित नहीं है। पाणिनि का ग्रंथ एक विशिष्ट भाषा-रूप का वर्णन है, और आधुनिक सिद्धांतों से उसकी सीधी समानताएँ खींचते समय सावधानी आवश्यक है।

कुंजी-शब्द: पाणिनि, अष्टाध्यायी, कारक, प्रत्याहार, स्फोट, संगणकीय भाषाविज्ञान, जनक-व्याकरण

1. भूमिका

भाषा का वैज्ञानिक विश्लेषण मानव-चिंतन की प्राचीनतम बौद्धिक साधनाओं में से एक है। भारतीय परंपरा में यह साधना वेदांगों में "व्याकरण" के रूप में विकसित हुई और पाणिनि की *अष्टाध्यायी* में अपने शिखर पर पहुँची [1]। इस ग्रंथ में लगभग चार हजार सूत्र आठ अध्यायों और बत्तीस पादों में व्यवस्थित हैं। परंपरागत गणना में सूत्रों की संख्या 3,959 मानी जाती है। पाठ-भेद और गणना-पद्धति के कारण कुछ विद्वान थोड़ी भिन्न संख्या भी बताते हैं [1,2]। पाणिनि का काल सामान्यतः ईसा-पूर्व पाँचवीं से चौथी शताब्दी के आसपास माना जाता है, यद्यपि विद्वानों में इस पर मतभेद है [3,4]।

पाणिनि के प्रति आधुनिक पश्चिमी भाषाविदों की प्रशंसा सुविदित है। ब्लूमफील्ड ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में इस व्याकरण को मानव-बुद्धि की महानतम उपलब्धियों में गिना और इसे विवरण की पूर्णता का असाधारण उदाहरण माना [3]। कार्दोना का सर्वेक्षण दर्शाता है कि उन्नीसवीं शताब्दी से बीसवीं शताब्दी तक पाणिनि-अध्ययन की धारा अनेक चरणों से गुजरी है [4]। भारतीय विद्वानों ने भी इस परंपरा की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर गहन कार्य किया है। वासुदेवशरण अग्रवाल ने *अष्टाध्यायी* के शब्दों के आधार पर तत्कालीन जनपदों, अर्थव्यवस्था और सामाजिक जीवन का चित्र प्रस्तुत किया [5]। युधिष्ठिर मीमांसक ने संस्कृत व्याकरण-शास्त्र के इतिहास को तीन खंडों में प्रस्तुत करते हुए पाणिनि-पूर्व और पाणिनि-उत्तर आचार्यों की परंपरा को क्रमबद्ध किया [6]।

प्रश्न यह है कि दो हजार पाँच सौ वर्ष पुराना यह ग्रंथ आज के भाषाविज्ञान के लिए केवल ऐतिहासिक धरोहर है, या उसमें ऐसे सैद्धांतिक और पद्धतिगत तत्त्व हैं जो समकालीन शोध को दिशा दे सकते हैं। यही इस शोध-पत्र की केंद्रीय जिज्ञासा है।

2. शोध-समस्या, उद्देश्य और प्रश्न

समस्या: भारतीय शैक्षणिक परिवेश में पाणिनि प्रायः दो अतियों के बीच पढ़ाए जाते हैं। एक ओर उन्हें "सर्वज्ञ" मानकर अंधश्रद्धा से देखा जाता है। दूसरी ओर उन्हें एक प्राचीन, अव्यावहारिक ग्रंथ कहकर आधुनिक भाषाविज्ञान से अलग रख दिया जाता है। हिन्दी में उपलब्ध भाषाविज्ञान की मानक पाठ्यपुस्तकें पाणिनि का उल्लेख करती हैं, पर समकालीन सैद्धांतिक और संगणकीय शोध से उसका संबंध बहुत कम जोड़ती हैं [7,8]।

उद्देश्य:

1. पाणिनीय व्याकरण की मूल संरचनात्मक विशेषताओं को साक्ष्यों सहित प्रस्तुत करना।
2. पाणिनि पर हुए प्रमुख शोध-कार्यों की समीक्षा और उनके परिणामों का विश्लेषण करना।
3. आधुनिक भाषाविज्ञान की विभिन्न शाखाओं में प्रासंगिकता का बहुदृष्टिकोणीय मूल्यांकन करना।
4. प्रासंगिकता की सीमाओं और आलोचनाओं को भी निष्पक्षता से रेखांकित करना।

शोध-प्रश्न:

- (क) पाणिनीय प्रणाली के कौन-से तत्त्व आधुनिक सैद्धांतिक भाषाविज्ञान से संवाद स्थापित करते हैं?
- (ख) संगणकीय भाषाविज्ञान में इस प्रणाली का व्यावहारिक योगदान क्या रहा है?
- (ग) हिन्दी और अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं के अध्ययन में यह किस सीमा तक उपयोगी है?
- (घ) कौन-से क्षेत्रों में तुलना अतिरंजित या भ्रामक हो सकती है?

परिकल्पना: पाणिनीय व्याकरण की प्रासंगिकता मुख्यतः उसके *पद्धतिगत सिद्धांतों* (नियम-आधारित निष्पादन, मितव्ययिता, स्तरीय विश्लेषण) में निहित है, न कि केवल संस्कृत-विशिष्ट विवरणों में।

3. शोध-पद्धति

यह अध्ययन **विश्लेषणात्मक साहित्यिक शोध** पर आधारित है। इसमें कोई प्रयोगात्मक सर्वेक्षण नहीं किया गया। शोध-सामग्री को तीन स्तरों पर वर्गीकृत कर तुलनात्मक और आलोचनात्मक पाठ-विश्लेषण किया गया:

1. **प्राथमिक स्रोत:** *अष्टाध्यायी*, पतंजलि का *महाभाष्य* [2], भर्तृहरि का *वाक्यपदीय* आदि मूल ग्रंथ। सूत्रों की व्याख्या में कात्रे का अंग्रेजी अनुवाद [9] और कार्दोना के अध्ययन [10] का सहारा लिया गया।
2. **द्वितीयक स्रोत:** पाणिनि पर लिखे गए शोध-ग्रंथ, लेख और पाठ्यपुस्तकें, जिनमें हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी तीनों की सामग्री सम्मिलित है।
3. **तुलनात्मक स्रोत:** आधुनिक भाषाविज्ञान के आधारभूत ग्रंथ, जैसे सस्यूर, चॉम्स्की, फ़िलमोर।

चयन-मानदंड: प्रकाशन-वर्ष 2023 से पूर्व हो, सामग्री पाणिनीय परंपरा या उसकी आधुनिक व्याख्या से सीधी संबद्ध हो, और प्रकाशन प्रतिष्ठित प्रकाशन-गृह, विश्वविद्यालय या सम्मेलन-कार्यवाही से हो।

सीमाएँ: मूल पांडुलिपियों का प्रत्यक्ष अध्ययन इस पत्र का क्षेत्र नहीं है। विश्लेषण प्रकाशित संस्करणों पर आधारित है, और सूत्रों की व्याख्या में परंपरागत टीकाओं के मतभेद बने रहते हैं।

4. संबंधित शोध-समीक्षा: परिणाम और निष्कर्ष

इस खंड में पाणिनि-संबंधी शोध को कालक्रम और विषय के आधार पर देखा गया है। प्रत्येक धारा के मुख्य निष्कर्ष अलग से रेखांकित किए गए हैं।

4.1 प्रारंभिक पाश्चात्य अध्ययन

उन्नीसवीं शताब्दी में बोएटलिक ने *अष्टाध्यायी* का जर्मन में संपादन और अनुवाद प्रस्तुत किया, जिससे यूरोपीय विद्वानों के लिए इस ग्रंथ तक सीधी पहुँच बनी [11]। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में थीमे ने पाणिनि और वेद के संबंध का अध्ययन किया और तर्क दिया कि पाणिनि ने वैदिक भाषा और लोक-भाषा के अंतर को सुचितित ढंग से पहचाना था [12]। रेनू ने फ्रांसीसी में पाणिनि के व्याकरण की समग्र प्रस्तुति दी [13]। शेफ्ट्स ने *Grammatical Method in Pāṇini* में पाणिनीय पद्धति का विश्लेषण करते हुए यह दिखाया कि सूत्रों के क्रम, अनुवृत्ति (पूर्व-सूत्र से पदों का अनुवर्तन) और संज्ञाओं का प्रयोग एक सुविचारित व्यवस्था का परिणाम है [14]।

परिणाम: इन प्रारंभिक कार्यों ने यह स्थापित किया कि पाणिनि का ग्रंथ शब्द-सूची नहीं, एक व्यवस्थित निष्पादन-प्रणाली है, जिसमें नियमों की व्यवस्था ही सिद्धांत का अंग है।

4.2 संरचनात्मक भाषाविज्ञान से संवाद

सस्यूर ने भाषा को चिह्नों की व्यवस्था और समकालिक (synchronic) अध्ययन का विषय माना [15]। पाणिनि का व्याकरण एक निश्चित काल की भाषा के समकालिक वर्णन का श्रेष्ठ उदाहरण है, और इसीलिए ब्लूमफील्ड जैसे संरचनावादी भाषाविदों को आकर्षित करता है [3]। स्टाल ने *A Reader on the Sanskrit Grammarians* में मूल पाठों के चयनित अंशों को अनूदित और व्याख्यायित करके पाश्चात्य भाषाविदों के लिए इस परंपरा को सुलभ बनाया [16]।

परिणाम: संरचनावादी दृष्टि से पाणिनि का योगदान वर्णन की सूक्ष्मता, रूपिम-आधारित विश्लेषण और भाषा को घटकों की व्यवस्था के रूप में देखने में दिखता है।

4.3 जनक-व्याकरण और औपचारिक भाषाविज्ञान

चॉम्स्की ने *Syntactic Structures* में नियम-आधारित औपचारिक व्याकरण का प्रारूप रखा [17] और *Aspects of the Theory of Syntax* में गहन-संरचना तथा सतही-संरचना का भेद स्थापित किया [18]। इसी काल से पाणिनि और जनक-व्याकरण की समानताओं पर विमर्श चला।

किपास्की ने *Pāṇini as a Variationist* में तर्क दिया कि पाणिनि के वैकल्पिक विधानों (जैसे "विभाषा", "वा") का उद्देश्य भाषा में विद्यमान वास्तविक विविधता को दर्ज करना था, और यह कि उनका व्याकरण केवल एक आदर्श "शुद्ध" रूप का विधान नहीं है [19]। किपास्की और स्टाल के संयुक्त लेख ने कारक-संबंधों को अर्थ-स्तर और रूप-स्तर के बीच मध्यवर्ती स्तर के रूप में विश्लेषित किया, जो जनक-अर्थविज्ञान की चर्चाओं से जुड़ा है [20]। स्टाल ने *Rules Without Meaning* में यह मत रखा कि भारतीय चिंतन में औपचारिक नियम-संरचना का विकास अनुष्ठान-परंपरा के नियमबद्ध स्वरूप से जुड़ा हो सकता है [21]। किपास्की ने शिवसूत्रों की रचना पर भी विचार किया और तर्क दिया कि उनका क्रम अधिकतम मितव्ययिता के सिद्धांत से समझा जा सकता है [22]। पेन और किपास्की ने पाणिनीय नियम-तंत्र को "संदर्भ-निर्भर प्रतिस्थापन प्रणाली" के रूप में औपचारिक रूप देकर उसकी जनन-क्षमता (generative capacity) की जाँच की [23]।

परिणाम: इन कार्यों का सामूहिक निष्कर्ष यह है कि पाणिनीय प्रणाली को औपचारिक मॉडलों में सटीक रूप से रखा जा सकता है, और उसकी मितव्ययिता-प्रवृत्ति और वैकल्पिकता की स्वीकृति आधुनिक सैद्धांतिक चर्चाओं के लिए प्रासंगिक है।

4.4 अर्थविज्ञान और भाषा-दर्शन

पाणिनीय परंपरा केवल रूपविधान तक सीमित नहीं रही। भर्तृहरि के *वाक्यपदीय* ने शब्द और अर्थ के संबंध, वाक्य की अखंडता और स्फोट-सिद्धांत पर मौलिक चिंतन प्रस्तुत किया [24]। कुंजुनि राजा ने भारतीय अर्थ-सिद्धांतों का सर्वेक्षण किया और दिखाया कि वैयाकरणों, मीमांसकों और नैयायिकों के अर्थ-विषयक मतों में गहरा संवाद रहा है [25]। मतिलाल ने अपनी पुस्तक में भारतीय दर्शन की भाषा-चिंतन धारा को समकालीन विश्लेषणात्मक दर्शन से जोड़कर देखा [26]। कोवार्ड और कुंजुनि राजा द्वारा संपादित खंड वैयाकरण-दर्शन का विस्तृत सर्वेक्षण प्रस्तुत करता है [27]। देशपांडे ने संज्ञाओं के अर्थ (नामार्थ) संबंधी विवाद, जैसे जाति बनाम व्यक्ति, का विश्लेषण किया [28]। ब्रॉन्खोर्स्ट ने भारतीय भाषा-चिंतन में यथार्थ और भाषा के संबंध की बहसों का ऐतिहासिक अध्ययन किया [29]।

परिणाम: अर्थविज्ञान के क्षेत्र में पाणिनीय परंपरा का सबसे सशक्त योगदान वाक्य को मूल इकाई मानने की दृष्टि और शब्दार्थ-संबंध की बहुस्तरीय व्याख्या है, जो व्यावहारिकी (pragmatics) और प्रकरण-निर्भर अर्थ की आधुनिक चर्चाओं के निकट आती है।

4.5 संगणकीय भाषाविज्ञान

यह वह क्षेत्र है जहाँ पाणिनि की प्रासंगिकता के सबसे ठोस और मापने योग्य प्रमाण मिलते हैं।

ब्रिम्स ने 1985 में *AI Magazine* में लिखा कि संस्कृत की कारक-आधारित विश्लेषण-पद्धति एक प्रकार से ज्ञान-निरूपण (knowledge representation) की प्रणाली है, और उसकी संरचना कृत्रिम बुद्धि में प्रयुक्त शब्दार्थ-जालों से मिलती-जुलती है [30]। इंगरमैन ने 1967 में प्रस्तावित किया कि प्रोग्रामिंग-भाषाओं के व्याकरण-लेखन की बैकस-नौर पद्धति को "पाणिनि-बैकस रूप" कहा जाए, क्योंकि पाणिनि ने बहुत पहले ऐसी ही औपचारिक व्याकरण-रचना की थी [31]। काक ने पाणिनीय दृष्टिकोण को प्राकृतिक भाषा-प्रक्रमण के लिए उपयोगी बताया [32], और भाटे तथा काक ने पाणिनि और संगणक-विज्ञान के संबंध का विश्लेषण किया [33]।

भारतीय संस्थानों में भारती, चैतन्य और सांगल ने *Natural Language Processing: A Paninian Perspective* में कारक-संबंधों, विभक्ति और क्रिया-आधारित विश्लेषण पर आधारित प्रक्रमण-ढाँचा विकसित किया [34]। भारती और सांगल ने मुक्त शब्दक्रम वाली भाषाओं के विश्लेषण में इस ढाँचे की उपयोगिता प्रदर्शित की [35]। हाइमन ने पाणिनीय संधि-नियमों को परिमित-अवस्था-परिवर्तक (finite-state transducer) के रूप में लागू किया [36]। ह्यू ने संस्कृत पाठ की औपचारिक संरचना और संधि-विच्छेद पर कार्य किया [37], तथा गोयल और सहयोगियों ने वितरित संस्कृत प्रक्रमण-मंच प्रस्तुत किया [38]। कुलकर्णी और उनके साथियों ने प्रतिबंध-आधारित संस्कृत पार्सर की रूपरेखा दी [39] और संस्कृत के "मुक्त शब्दक्रम" की परीक्षा करके दिखाया कि शब्दक्रम वास्तव में अनेक प्रतिबंधों से शासित है [40]। बेगम और सहयोगियों ने भारतीय भाषाओं के लिए निर्भरता-टिप्पणी की योजना कारक-लेबलों के आधार पर बनाई [41]। भट्ट और उनके सहयोगियों ने हिन्दी-उर्दू ट्रीबैंक में निर्भरता और वाक्य-संरचना के बहु-स्तरीय निरूपण को इसी परंपरा से जोड़ा [42]। अनंद मिश्र ने पाणिनीय संस्कृत व्याकरण के अनुकरण (simulation) का प्रयास किया [43], शार्फ और हाइमन ने संस्कृत के डिजिटल कूटन के भाषावैज्ञानिक प्रश्नों पर कार्य किया [44], और कडवनी ने पाणिनि की प्रणाली में स्थानमान (positional value) और पुनरावर्तन (recursion) के संबंध का अध्ययन किया [45]।

परिणाम: इन कार्यों ने दिखाया कि (i) संधि और रूप-विश्लेषण के लिए पाणिनीय नियम सीधे कलन-विधि में बदले जा सकते हैं; (ii) कारक-आधारित निर्भरता-मॉडल हिन्दी जैसी मुक्त-शब्दक्रम भाषाओं के लिए उपयुक्त है; (iii) पूर्ण स्वचालन में सूत्र-संघर्ष का समाधान और संदर्भ-निर्भर व्याख्या चुनौतीपूर्ण बनी रहती है।

4.6 सूत्र-संघर्ष-समाधान पर नवीनतम बहस

2022 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में प्रस्तुत राजपोपट के शोध-प्रबंध ने पाणिनीय व्याकरण में दो नियमों के परस्पर टकराव को हल करने की एक नई व्याख्या प्रस्तावित की। परंपरागत व्याख्या "विप्रतिषेधे परं कार्यम्" के आधार पर बाद वाले सूत्र को प्रबल मानती है, जबकि इस शोध ने तर्क दिया कि शब्द के बाएँ और दाएँ अंगों पर लागू होने वाले नियमों में दाएँ अंग पर लागू नियम को प्राथमिकता मिलती है [46]। यह दावा शैक्षणिक जगत और मीडिया में व्यापक चर्चा का विषय रहा। इस पर विद्वानों की प्रतिक्रियाएँ मिश्रित रहीं: कुछ ने इसे परंपरागत वैयाकरणों की अनदेखी हुई व्याख्या को पुनर्जीवित करने वाला बताया, जबकि अन्य ने कहा कि इसकी सार्वभौमिकता और समर्थन के लिए और परीक्षण आवश्यक हैं।

परिणाम: निष्कर्ष यह नहीं कि पाणिनि की पहली "हल" हो चुकी है, बल्कि यह कि पाणिनीय व्याकरण के आंतरिक तंत्र की व्याख्या आज भी एक जीवंत शोध-क्षेत्र है।

4.7 हिन्दी और भारतीय भाषाओं के संदर्भ में कार्य

हिन्दी में सर्वाधिक उल्लेखनीय प्रयास किशोरीदास वाजपेयी का *हिन्दी शब्दानुशासन* है, जिसमें उन्होंने हिन्दी के व्याकरण को पाणिनीय शैली के अनुशासन और पद्धति से व्यवस्थित करने का प्रयास किया [47]। देवेन्द्रनाथ शर्मा की *भाषाविज्ञान की भूमिका* जैसी पाठ्यपुस्तकें भारतीय व्याकरण-परंपरा को आधुनिक भाषाविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में समझाने का माध्यम बनीं [48]। बलदेव उपाध्याय के संस्कृत-साहित्य-इतिहास में व्याकरण-शास्त्र की परंपरा को साहित्य-इतिहास के अंग के रूप में देखा गया है [49]। कपिल कपूर ने *Language, Linguistics and Literature: The Indian Perspective* में भारतीय भाषा-चिंतन की मौलिकता पर बल दिया [50]।

परिणाम: हिन्दी की परंपरा में पाणिनि का प्रभाव वर्णनात्मक व्याकरण की पद्धति के रूप में अधिक दिखता है, जबकि संगणकीय और सैद्धांतिक उपयोग मुख्यतः अंग्रेज़ी-माध्यम के शोध में हुआ है। यह असंतुलन इस विषय पर हिन्दी में अधिक शोध की आवश्यकता दर्शाता है।

5. पाणिनीय व्याकरण की संरचना: विश्लेषण हेतु आधार-सामग्री

आधुनिक भाषाविज्ञान से तुलना से पहले पाणिनीय प्रणाली के मूल घटकों को समझना आवश्यक है।

5.1 शिवसूत्र और प्रत्याहार

अष्टाध्यायी के आरंभ में चौदह माहेश्वर (शिव) सूत्र दिए गए हैं, जिनमें संस्कृत के वर्णों को एक विशेष क्रम में रखा गया है [1,9]। प्रत्येक सूत्र के अंत में एक "इत्" (अनुबन्ध) व्यंजन होता है। किसी वर्ण से आरंभ करके किसी इत्-वर्ण तक का पूरा वर्ग-समूह एक संक्षिप्त संज्ञा में कह दिया जाता है। इसे प्रत्याहार कहते हैं। उदाहरणार्थ "अच्" सभी स्वरों का और "हल्" सभी व्यंजनों का बोध कराता है। यह पद्धति नियमों को अत्यंत संक्षिप्त रूप में लिखने की सुविधा देती है, और किपास्की ने इसकी इसी मितव्ययिता की ओर ध्यान दिलाया है [22]।

आधुनिक स्वनविज्ञान में स्वन-वर्गों को "विभेदक लक्षणों" (distinctive features) द्वारा वर्णित करने की जो पद्धति है, वह इसी प्रकार प्राकृतिक वर्गों (natural classes) को संक्षिप्त संकेतों से निरूपित करती है। दोनों का उद्देश्य एक जैसा है: नियमों को सामान्य रूप से कहना, ताकि वे स्वनों के पूरे वर्ग पर लागू हो सकें।

5.2 संज्ञा, परिभाषा और अधिकार

पाणिनीय सूत्र प्रमुखतः तीन प्रकार के हैं: **संज्ञा-सूत्र** (पारिभाषिक शब्दों की परिभाषा), **विधि-सूत्र** (जो कोई संचालन निर्धारित करें) और **अधिकार-सूत्र** (जो किसी शीर्षक की तरह आगे के सूत्रों पर प्रभाव रखें)। अनुवृत्ति के कारण एक सूत्र के पद आगे के सूत्रों में स्वतः जुड़ जाते हैं, जिससे पुनरावृत्ति टलती है [9,14]। यह प्रणाली आज की प्रोग्रामिंग में चर के परास (scope) और विरासत (inheritance) की अवधारणा के निकट ठहरती है।

5.3 धातुपाठ और शब्द-निर्माण

धातुपाठ में लगभग दो हजार धातुएँ दस गणों में वर्गीकृत हैं। इन धातुओं से प्रत्यय जोड़कर तिङन्त और कृदन्त रूप बनते हैं। नाम-पदों के लिए सुप्-प्रत्यय, समास और तद्धित का विधान है। शब्द-निर्माण की यह प्रक्रिया आधुनिक रूपविज्ञान की "मूल + प्रत्यय" पद्धति और व्युत्पादक रूपविज्ञान (derivational morphology) से सीधी तुलना योग्य है [10]।

5.4 कारक-व्यवस्था

पाणिनि छह कारक स्वीकार करते हैं: **कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण**। ये क्रिया के साथ संज्ञा का संबंध बताते हैं। पाणिनीय दृष्टि में कारक और विभक्ति एक नहीं हैं। विभक्ति रूप-स्तर की इकाई है, जबकि कारक अर्थ-संबंध-स्तर की। किसी एक कारक को भिन्न-भिन्न विभक्तियों में अभिव्यक्त किया जा सकता है, और एक ही विभक्ति कई कारकों को व्यक्त कर सकती है [20]। फ़िलमोर के "कारक-व्याकरण" (Case Grammar) में गहन कारकों की जो कल्पना है, वह अनेक विद्वानों को इस पाणिनीय भेद से मिलती-जुलती लगी है [51]।

5.5 विप्रतिषेध और अपवाद

जब दो नियम एक ही स्थिति में लागू हो सकते हों, तब पाणिनीय परंपरा कुछ सिद्धांत बताती है: विशेष सूत्र सामान्य सूत्र का बाध करता है (अपवाद-सिद्धांत), और समान-बल के नियमों में परवर्ती सूत्र प्रबल होता है (विप्रतिषेध)। परवर्ती परंपरा में नागेश भट्ट के *परिभाषेन्दुशेखर* जैसे ग्रंथों ने इन परिभाषाओं को संकलित और व्याख्यायित किया [52]। आधुनिक भाषाविज्ञान में इसकी तुलना "एल्सव्हेयर कंडीशन" या "विशिष्टता-सिद्धांत" से की जाती है।

6. विश्लेषण: विभिन्न भाषावैज्ञानिक शाखाओं में प्रासंगिकता

6.1 स्वनविज्ञान और स्वनिमविज्ञान

पाणिनि का वर्णन स्थान (उच्चारण-स्थान) और प्रयत्न (उच्चारण-विधि) पर आधारित है, जो आधुनिक उच्चारण-स्वनविज्ञान (articulatory phonetics) की कोटियों से मेल खाता है। संधि-नियम, जैसे स्वर-संधि, व्यंजन-संधि और विसर्ग-संधि, "स्वनिमिक नियमों" (phonological rules) की पूर्वरूप-प्रस्तुति हैं, क्योंकि वे अंतर्निहित रूप से सतही रूप की ओर संक्रमण का वर्णन करते

हैं। हाइमन का कार्य सिद्ध करता है कि ये नियम औपचारिक रूप से परिमित-अवस्था-तंत्रों में व्यक्त हो सकते हैं [36]। इसी कारण संगणकीय स्वन-प्रक्रमण के लिए यह परंपरा व्यावहारिक महत्त्व रखती है।

हिन्दी के संदर्भ में यह ध्यान देने योग्य है कि देवनागरी लिपि की ध्वन्यात्मक व्यवस्था पाणिनीय-शिक्षा-परंपरा (उच्चारण-स्थान के अनुसार वर्ण-क्रम) से ही निर्मित है। यह लिपि और भाषा के बीच अपेक्षाकृत सीधे संबंध का कारण है। इसका लाभ हिन्दी वाक्-संश्लेषण और वाक्-पहचान की प्रणालियों में मिलता है।

6.2 रूपविज्ञान

पाणिनीय रूपविज्ञान की मूल प्रवृत्ति **मूल से रूप तक की निष्पादन-यात्रा** है। धातु या प्रातिपदिक को आरंभ-बिंदु मानकर उस पर क्रमशः प्रत्यय, आगम, आदेश और लोप जैसे संचालन लगते हैं। इसे आधुनिक भाषाविज्ञान में **मद-और-प्रक्रिया** (Item-and-Process) मॉडल के निकट समझा जाता है, जबकि संरचनावादी "मद-और-व्यवस्था" (Item-and-Arrangement) मॉडल इससे भिन्न दृष्टि रखता है।

पाणिनि के यहाँ शून्य-रूप (लुक्, श्लु, लुप्) की स्वीकृति भी उल्लेखनीय है: जब कोई प्रत्यय उपस्थित होकर भी ध्वन्यात्मक रूप से अदृश्य रहे, तब भी व्याकरण उसका लेखा रखता है। आधुनिक रूपविज्ञान में "शून्य रूपिम" की धारणा उसी विचार का विस्तार लगती है।

हिन्दी की संज्ञा-विभक्तियाँ (ने, को, से, में, पर) और परसर्ग-प्रणाली संस्कृत की विभक्ति-प्रणाली से भिन्न हैं। हिन्दी विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति की ओर झुकी है, फिर भी कारक-संबंधों की अवधारणा हिन्दी के वाक्य-विश्लेषण में भी उतनी ही सटीकता से लागू की जा सकती है [34,41]। यही कारण है कि हिन्दी पार्सिंग-प्रणालियों में पाणिनीय कारक-लेबल सफलतापूर्वक अपनाए गए हैं।

6.3 वाक्यविज्ञान

पाणिनि का वाक्य-विश्लेषण क्रिया-केंद्रित है: क्रिया वाक्य की धुरी है और संज्ञाएँ उसके साथ कारक-संबंधों से जुड़ती हैं। यह परिप्रेक्ष्य आधुनिक **निर्भरता-व्याकरण** (Dependency Grammar) के निकट है, जिसमें क्रिया को केंद्र मानकर अन्य शब्द उस पर निर्भर माने जाते हैं। इसके विपरीत अवयव-संरचना-व्याकरण (Phrase Structure Grammar) संज्ञा-पदबंध और क्रिया-पदबंध जैसे उपसमूहों पर बल देता है।

भारतीय भाषाओं में शब्दक्रम अपेक्षाकृत लचीला है। हिन्दी में "राम ने मोहन को किताब दी" और "मोहन को राम ने किताब दी" दोनों वाक्य स्वीकार्य हैं, और अर्थ-भेद प्रायः विभक्ति-चिह्नों से पहचाना जाता है, स्थिति से नहीं। जिन भाषाओं में क्रम से ही कर्ता-कर्म का बोध होता है, उनके लिए निर्भरता-व्याकरण उतना स्वाभाविक नहीं हो सकता। परंतु मुक्त-शब्दक्रम वाली भाषाओं के लिए कारक-आधारित मॉडल अधिक उपयुक्त रहता है [35]। कुलकर्णी और सहयोगियों का यह विश्लेषण भी महत्त्वपूर्ण है कि संस्कृत में "मुक्त" शब्दक्रम वास्तव में पूर्णतः मुक्त नहीं, बल्कि सूचना-संरचना और अन्य प्रतिबंधों से शासित है [40]। इसलिए पाणिनीय कारक-मॉडल को शब्दक्रम के अध्ययन से अलग नहीं, बल्कि उसके पूरक के रूप में देखना चाहिए।

6.4 अर्थविज्ञान और व्यावहारिकी

पाणिनीय प्रणाली अर्थ को पूर्णतः अलग नहीं रखती। कई सूत्र अर्थ-आधारित शर्तें रखते हैं ("अर्थे", "कर्तरि" आदि)। कारक की परिभाषा भी अर्थ-आधारित है, जैसे "स्वतन्त्रः कर्ता" (जो क्रिया-प्रक्रिया में स्वतंत्र हो वह कर्ता)। इसलिए पाणिनि का वाक्य-विश्लेषण स्वतंत्र वाक्य-रचना का विश्लेषण नहीं, अर्थ और रूप के बीच के संबंध का विश्लेषण है [20]।

भर्तृहरि के स्फोट-सिद्धांत में वाक्य को अखंड अर्थ-इकाई मानकर पद और वर्ण को उसके विश्लेषण-मात्र के अंग माना गया [24]। यह दृष्टि आधुनिक संज्ञानात्मक भाषाविज्ञान की उस अवधारणा के निकट है जो अर्थ को शब्द-योग के बजाय समग्र रूप में ग्रहण करने पर बल देती है। मतिलाल ने इसे भाषा-दर्शन की समकालीन बहसों से जोड़कर देखा है [26]। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि स्फोट-सिद्धांत मूलतः दार्शनिक है। उसका सीधा आनुभविक परीक्षण संभव नहीं, और आधुनिक मनोभाषाविज्ञान से इसकी तुलना प्रतीकात्मक अधिक है।

6.5 सामाजिक भाषाविज्ञान और भाषा-विविधता

पाणिनि "भाषा" (लोक-प्रचलित शिष्ट भाषा) और "छन्दस्" (वैदिक भाषा) में अंतर करते हैं और कई स्थानों पर "प्राचाम्" (पूर्वी) और "उदीचाम्" (उत्तरी) वैयाकरणों के मतभेद का संकेत करते हैं। देशपांडे ने संस्कृत की सामाजिक-भाषाई स्थिति पर विस्तार से अध्ययन करके दिखाया कि संस्कृत केवल "बंद" कृत्रिम भाषा नहीं थी। उसमें बोलचाल, शिष्टता और सामाजिक स्तर के अनुसार विविधता के प्रमाण मिलते हैं [53]। किपास्की का "विविधता-विश्लेषक पाणिनि" वाला तर्क भी इसी दिशा में है [19]। यह पक्ष इस धारणा को चुनौती देता है कि पाणिनीय व्याकरण भाषा के जीवंत विकास से कटा हुआ मानक-थोपने वाला ग्रंथ है।

6.6 संगणकीय भाषाविज्ञान और कृत्रिम बुद्धि

संगणकीय क्षेत्र में पाणिनि की उपयोगिता चार स्तरों पर देखी जा सकती है:

(क) औपचारिक भाषा-सिद्धांत: पाणिनीय सूत्र-रचना और प्रोग्रामिंग-भाषाओं के व्याकरण की संरचनात्मक समानता को इंगरमैन ने रेखांकित किया [31]। कडवनी ने संकेत-पद्धति और पुनरावर्तन के संबंध पर सैद्धांतिक चर्चा जोड़ी [45]।

(ख) रूप-विश्लेषण और संधि-विच्छेद: ह्यूए और गोयल के कार्य में संस्कृत के पाठ का स्वचालित विश्लेषण संभव हुआ [37,38]।

(ग) पार्सिंग और निर्भरता-टिप्पणी: भारती-सांगल की पद्धति और बेगम-भट्ट की टिप्पणी-योजनाओं ने हिन्दी-उर्दू जैसी भाषाओं के लिए व्यावहारिक ट्रीबैंक और पार्सर बनाए [34,41,42]।

(घ) ज्ञान-निरूपण: ब्रिग्स के अनुसार कारक-विश्लेषण से बनी संरचनाएँ अर्थ-आधारित निरूपण के लिए उपयोगी हैं [30]।

इन उपलब्धियों के साथ एक व्यावहारिक सावधानी भी आवश्यक है। पाणिनीय व्याकरण के पूर्ण स्वचालन में वे स्थल कठिन बने रहते हैं जहाँ सूत्र-व्याख्या टीकाकारों में भिन्न है, या जहाँ अर्थ-संदर्भ पर निर्भरता है। राजपोपट का कार्य यही दर्शाता है कि नियम-संघर्ष जैसे मूलभूत प्रश्नों पर भी अंतिम सहमति नहीं बनी है [46]।

6.7 भाषा-शिक्षण और शिक्षाशास्त्रीय प्रासंगिकता

पाणिनीय पद्धति की एक शिक्षाशास्त्रीय विशेषता यह है कि वह भाषा को नियम-सूत्रों द्वारा उत्पादक रूप में सिखाती है, और छात्र सीमित नियमों से असीमित शब्द-रूप बनाना सीखता है। आधुनिक भाषा-शिक्षण में यह "उत्पादक व्याकरण" की अवधारणा के समान है। परंतु परंपरागत पाणिनीय शिक्षण का सूत्र-कंठस्थीकरण का ढंग आज के शिक्षार्थी के लिए कठिन है। इसीलिए भट्टोजिदीक्षित की *सिद्धान्तकौमुदी* जैसी प्रक्रिया-क्रम-आधारित पुनर्संरचना की परंपरा विकसित हुई, जिसमें सूत्रों को विषय-वार सजाया गया [6].

7. विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रासंगिकता का मूल्यांकन

प्रामाणिक शोध के लिए केवल अनुकूल साक्ष्य नहीं, विरोधी और मध्यवर्ती मतों की परीक्षा भी आवश्यक है।

7.1 प्रशंसात्मक/समर्थक दृष्टिकोण

इस मत के अनुसार पाणिनीय व्याकरण आधुनिक सिद्धांतों का पूर्वरूप है। ब्लूमफील्ड की प्रशंसा [3], इंगरमैन का नामकरण-प्रस्ताव [31] और कपिल कपूर की मान्यता [50] इसी धारा में आते हैं। इस दृष्टि की शक्ति यह है कि यह भारतीय बौद्धिक योगदान को उचित मान्यता देती है। इसकी दुर्बलता यह है कि यह कभी-कभी अतीत को आधुनिक चश्मे से पढ़ने की भूल कर बैठती है।

7.2 समालोचनात्मक/सतर्क दृष्टिकोण

स्टाल का कहना है कि पाणिनि और आधुनिक जनक-व्याकरण की समानताओं को बढ़ा-चढ़ाकर देखना उचित नहीं, क्योंकि दोनों के प्रश्न, संदर्भ और प्रेरणाएँ भिन्न हैं [21]। पाणिनि किसी "सार्वभौमिक व्याकरण" का प्रस्ताव नहीं रखते। वे एक विशिष्ट भाषा-रूप का नियम-बद्ध वर्णन करते हैं। इसी प्रकार कार्दोना का सर्वेक्षण दर्शाता है कि सूत्रों की व्याख्या में परंपरागत टीकाओं और आधुनिक विद्वानों के बीच अनेक असहमतियाँ हैं [4]। इसलिए "पाणिनि ने चॉम्स्की को पहले ही कह दिया था" जैसे लोकप्रिय कथन वैज्ञानिक दृष्टि से अपरिपक्व हैं।

7.3 औपचारिक/सैद्धांतिक दृष्टिकोण

पेन-किपास्की जैसे कार्य पाणिनीय प्रणाली को शुद्ध औपचारिक भाषा-सिद्धांत की कसौटी पर परखते हैं [23]। इस दृष्टि से मूल्यवान प्रश्न यह है कि यह प्रणाली किस जटिलता-वर्ग की भाषाओं को उत्पन्न कर सकती है, और उसके निष्पादन-क्रम की विशेषताएँ क्या हैं। यह दृष्टिकोण ऐतिहासिक श्रद्धा से हटकर प्रणाली को स्वतंत्र गणितीय वस्तु के रूप में देखता है।

7.4 संगणकीय/व्यावहारिक दृष्टिकोण

यहाँ कसौटी सैद्धांतिक सुंदरता नहीं, बल्कि प्रदर्शन है: क्या यह पद्धति वास्तव में अच्छा पार्सर बनाती है? भारती-सांगल का कार्य [34,35] और कुलकर्णी का कार्य [39] इसी परख के उदाहरण हैं। परिणाम मिश्रित लेकिन सकारात्मक हैं। कारक-आधारित मॉडल भारतीय भाषाओं के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ, परंतु आधुनिक सांख्यिकीय और तंत्रिका-जाल-आधारित पद्धतियों के आगे शुद्ध नियम-आधारित प्रणालियों को बड़े आँकड़ों की आवश्यकता से जूझना पड़ता है। इसलिए व्यावहारिक भविष्य संकर (hybrid) प्रणालियों में दिखता है, जिनमें नियम और आँकड़े दोनों काम करें।

7.5 दार्शनिक/अर्थविज्ञानी दृष्टिकोण

भर्तृहरि, मतिलाल और कुंजुनि राजा के कार्य दिखाते हैं कि पाणिनीय परंपरा केवल रूप-निष्पादन की तकनीक नहीं, बल्कि भाषा और यथार्थ के संबंध पर गहन चिंतन भी है [24-27]। इस दृष्टि से प्रासंगिकता भाषा-दर्शन, संज्ञानात्मक विज्ञान और अर्थ-सिद्धांत की चर्चाओं में देखी जा सकती है।

7.6 सामाजिक-ऐतिहासिक दृष्टिकोण

अग्रवाल का कार्य दिखाता है कि पाणिनि का ग्रंथ अपने युग की सामाजिक और भौगोलिक झलक भी देता है [5]। देशपांडे का कार्य दर्शाता है कि संस्कृत की मानकता और विविधता के प्रश्न सामाजिक संदर्भों से जुड़े रहे [53]। इस दृष्टि से पाणिनि केवल "भाषा-यंत्र" नहीं, एक सामाजिक-भाषाई दस्तावेज़ भी हैं।

7.7 तुलनात्मक मूल्यांकन

पाँचों दृष्टिकोणों की तुलना से एक संतुलित निष्कर्ष उभरता है:

- **सुदृढ़ प्रासंगिकता** वहाँ है जहाँ पाणिनीय सिद्धांत का सीधा उपयोग औपचारिक या संगणकीय रूप में हुआ है, जैसे संधि-प्रक्रिया, कारक-आधारित निर्भरता, मितव्ययी संकेतना।
- **सशर्त प्रासंगिकता** वहाँ है जहाँ तुलना वैचारिक है, जैसे स्फोट और वाक्य-अर्थ की समग्रता, या पाणिनि और जनक-व्याकरण के मध्य समानता।
- **सीमित प्रासंगिकता** वहाँ है जहाँ संस्कृत-विशिष्ट रूप-विधान अन्य भाषाओं पर लागू नहीं होते।

8. संवादी चर्चा: पाणिनि और आधुनिक भाषाविज्ञान की तुलनात्मक विवेचना

8.1 नियम-प्रधानता बनाम आँकड़ा-प्रधानता

आधुनिक भाषाविज्ञान और भाषा-प्रौद्योगिकी में एक बड़ी बहस नियम-आधारित और आँकड़ा-आधारित पद्धतियों के बीच है। पाणिनीय प्रणाली स्पष्टतः नियम-प्रधान है, पर उसकी विशेषता यह है कि उसके नियम अत्यंत संक्षिप्त, क्रमबद्ध और सामान्यीकरण-योग्य हैं। बड़े भाषा-मॉडल आँकड़ों से सांख्यिकीय नियमितताएँ सीखते हैं, पर उन नियमितताओं का स्पष्ट निरूपण प्रायः उपलब्ध नहीं होता। पाणिनीय दृष्टि "व्याख्येयता" (interpretability) का आदर्श प्रस्तुत करती है। भाषा-मॉडलों की पारदर्शिता पर आज जो चिंता है, उसके संदर्भ में यह पक्ष विशेष रूप से विचारणीय है। यह एक विश्लेषणात्मक टिप्पणी है, किसी प्रयोगसिद्ध परिणाम का दावा नहीं।

8.2 मितव्ययिता का सिद्धांत

पतंजलि की परंपरा में कहा गया है कि वैयाकरण अर्धमात्रा की लाघव (संक्षेप) को भी पुत्रोत्सव के समान आनंद मानते हैं। यह कथन परंपरा में "लाघव" के महत्त्व को दर्शाता है और अनेक विद्वानों द्वारा उद्धृत होता है [2]। आधुनिक विज्ञान-दर्शन में "ऑकम का उस्तरा" और भाषाविज्ञान में सरलता-मापन (simplicity metric) की चर्चा इसी प्रवृत्ति से मिलती है। किपास्की का शिवसूत्र-विश्लेषण इस लाघव को गणितीय रूप से पुष्ट करता है [22]।

8.3 निष्पादन-क्रम और नियम-व्यवस्था

पाणिनीय नियमों में कुछ नियम "असिद्ध" माने जाते हैं, अर्थात् कुछ परिस्थितियों में उनके प्रभाव को बाद के नियम के लिए अदृश्य माना जाता है। यह तंत्र आधुनिक स्वनिमविज्ञान की "नियम-क्रम" (rule ordering), "फ्रीडिंग-ब्लीडिंग" संबंधों और अनुकूलता-सिद्धांत (Optimality Theory) की सीमाओं वाली बहसों से तुलना योग्य है। यहाँ भी पाणिनि से आधुनिक सिद्धांतों का कोई प्रत्यक्ष वंशानुगत संबंध नहीं, केवल समस्या-साम्य है।

8.4 भाषा को उत्पादक व्यवस्था मानना

पाणिनि का व्याकरण सीमित नियमों से असीमित रूप-निर्माण की क्षमता रखता है। चॉम्स्की की मौलिक अंतर्दृष्टि भी भाषा की इसी रचनात्मकता पर टिकी है [18]। यहाँ समानता अवश्य है, परंतु अंतर यह है कि चॉम्स्की का लक्ष्य मानव-मस्तिष्क की अंतर्निहित भाषा-क्षमता का सिद्धांत बनाना है, जबकि पाणिनि का लक्ष्य एक भाषा का पूर्ण निष्पादन-वर्णन है [21]।

8.5 हिन्दी-भाषी शोध-जगत के लिए निहितार्थ

हिन्दी में भाषाविज्ञान-शिक्षण की अधिकांश पाठ्यपुस्तकें भारतीय परंपरा का परिचय देती हैं, पर उसके आधुनिक अनुप्रयोगों की चर्चा सीमित है [7,8,48]। विश्वविद्यालयों के भाषाविज्ञान और संस्कृत विभागों के बीच सहयोग बढ़ाकर तथा संगणकीय पाणिनि-अध्ययन को हिन्दी माध्यम में सुलभ कराकर इस अंतर को पाटा जा सकता है।

9. निष्कर्ष

इस अध्ययन के निष्कर्ष निम्नलिखित हैं:

1. **पाणिनीय व्याकरण एक निष्पादन-प्रणाली है।** उसकी शक्ति नियमों की क्रमबद्धता, अनुवृत्ति-आधारित संक्षेप और मितव्ययी संज्ञा-व्यवस्था में है [14,22]।
2. **संगणकीय क्षेत्र में प्रासंगिकता सर्वाधिक ठोस है।** संधि-विश्लेषण, कारक-आधारित निर्भरता-पार्सिंग और ज्ञान-निरूपण में पाणिनीय सिद्धांतों के उपयोग के प्रमाण उपलब्ध हैं [30,34,36,41]।
3. **सैद्धांतिक भाषाविज्ञान से संवाद वास्तविक है, पर सतर्क मूल्यांकन की माँग करता है।** औपचारिक, संरचनात्मक और जनक-दृष्टियों से समानताएँ और भिन्नताएँ दोनों हैं [17-23]।
4. **अर्थ और दर्शन के स्तर पर योगदान अद्वितीय है।** वाक्य-केंद्रित अर्थ-दृष्टि और कारक-सिद्धांत आज भी विचारणीय हैं [20,24,26]।
5. **हिन्दी और आधुनिक भारतीय भाषाओं के लिए पद्धतिगत उपयोगिता स्पष्ट है, पर इस दिशा में हिन्दी-माध्यम शोध अपेक्षाकृत कम है** [34,41,47]।
6. **कई मूलभूत प्रश्न अब भी खुले हैं।** सूत्र-संघर्ष-समाधान की नई व्याख्याएँ दिखाती हैं कि यह जीवंत शोध-क्षेत्र है और अंतिम निर्णय शेष है [46]।

परिकल्पना का मूल्यांकन: आरंभ में रखी गई परिकल्पना कि प्रासंगिकता मुख्यतः पद्धतिगत सिद्धांतों में निहित है, उपलब्ध साहित्य से पुष्ट होती है। संस्कृत-विशिष्ट विवरण उसी भाषा के लिए मूल्यवान हैं, जबकि नियम-प्रधान, स्तरीय और मितव्ययी विश्लेषण की पद्धति भाषा-निरपेक्ष रूप से उपयोगी है।

10. सीमाएँ और भावी शोध-दिशाएँ

सीमाएँ: यह अध्ययन साहित्यिक-विश्लेषणात्मक है और प्रयोगात्मक परीक्षण पर आधारित नहीं। पांडुलिपि-स्तर की तुलना, सूत्रों के सभी पाठ-भेदों की विवेचना और पूर्णतः स्वतंत्र संगणकीय मूल्यांकन इसके दायरे से बाहर हैं।

भावी शोध के सुझाव:

- हिन्दी और अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं के लिए कारक-आधारित संकर (नियम + आँकड़ा) पार्सर का मूल्यांकन।
- पाणिनीय नियम-क्रम और आधुनिक स्वनिमित्त सिद्धांतों (जैसे अनुकूलता-सिद्धांत) का प्रयोगसिद्ध तुलनात्मक अध्ययन।
- संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत और अपभ्रंश पर पाणिनीय पद्धति के अनुप्रयोग की जाँच।
- हिन्दी माध्यम में पाणिनि के संगणकीय और सैद्धांतिक पक्षों पर पाठ्य-सामग्री का विकास।
- भाषा-मॉडलों की व्याख्येयता के संदर्भ में पाणिनीय नियम-प्रणाली के उपयोग की संभावनाओं का परीक्षण।

11. उपसंहार

पाणिनि का ग्रंथ एक प्राचीन स्मारक होने के साथ-साथ जीवंत बौद्धिक संसाधन भी है। जो शोधकर्ता उसे पूजा की वस्तु बनाकर रखते हैं, वे उसके साथ न्याय नहीं करते। जो उसे अप्रासंगिक अवशेष मानकर छोड़ देते हैं, वे भी नहीं। न्यायसंगत मार्ग यह है कि उसे ऐतिहासिक संदर्भ में समझकर, उसके पद्धतिगत सिद्धांतों को आधुनिक प्रश्नों के साथ विवेकपूर्वक संवाद में लाया जाए। भाषा-प्रौद्योगिकी और सैद्धांतिक भाषाविज्ञान के इस युग में यह संवाद पहले से अधिक फलदायी सिद्ध हो सकता है।

संदर्भ-सूची

1. Vasu SC, translator. The Ashtadhyayi of Panini. Delhi: Motilal Banarsidass; 1962.
2. Patañjali. Vyākaraṇa Mahābhāṣya. Kielhorn F, editor. Bombay: Government Central Book Depot; 1880–1885.
3. Bloomfield L. Language. New York: Henry Holt; 1933.
4. Cardona G. Pāṇini: A Survey of Research. The Hague: Mouton; 1976.
5. अग्रवाल वासुदेवशरण. पाणिनिकालीन भारतवर्ष. वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन; 1955.
6. मीमांसक युधिष्ठिर. संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास. 3 खंड. बहालगढ़: रामलाल कपूर ट्रस्ट; 1984.
7. तिवारी भोलानाथ. भाषा विज्ञान. इलाहाबाद: किताब महल; 1951.
8. द्विवेदी कपिलदेव. भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र. वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन; 1996.
9. Katre SM. Aṣṭādhyāyī of Pāṇini. Austin: University of Texas Press; 1987.
10. Cardona G. Pāṇini: His Work and its Traditions. Vol. 1. Delhi: Motilal Banarsidass; 1988.
11. Böhtlingk O. Pāṇini's Grammatik. Leipzig: H. Haessel; 1887.
12. Thieme P. Pāṇini and the Veda. Allahabad: Globe Press; 1935.
13. Renou L. La Grammaire de Pāṇini. Paris: École française d'Extrême-Orient; 1966.
14. Shefts B. Grammatical Method in Pāṇini. New Haven: American Oriental Society; 1961.
15. de Saussure F. Cours de linguistique générale. Paris: Payot; 1916.

16. Staal JF. A Reader on the Sanskrit Grammarians. Cambridge (MA): MIT Press; 1972.
17. Chomsky N. Syntactic Structures. The Hague: Mouton; 1957.
18. Chomsky N. Aspects of the Theory of Syntax. Cambridge (MA): MIT Press; 1965.
19. Kiparsky P. Pāṇini as a Variationist. Cambridge (MA): MIT Press; 1979.
20. Kiparsky P, Staal JF. Syntactic and semantic relations in Pāṇini. Foundations of Language. 1969;5(1):83–117.
21. Staal F. Rules Without Meaning: Ritual, Mantras and the Human Sciences. New York: Peter Lang; 1989.
22. Kiparsky P. Economy and the construction of the Śivasūtras. In: Deshpande MM, Bhate S, editors. Pāṇinian Studies. Ann Arbor: University of Michigan; 1991. p. 103–130.
23. Penn G, Kiparsky P. On Pāṇini and the generative capacity of contextualized replacement systems. In: Proceedings of COLING 2012. Mumbai; 2012. p. 943–950.
24. Iyer KAS. Vākyapadīya of Bhartṛhari, Kāṇḍa I. Poona: Deccan College; 1966.
25. Kunjunni Raja K. Indian Theories of Meaning. Madras: Adyar Library and Research Centre; 1963.
26. Matilal BK. The Word and the World: India's Contribution to the Study of Language. Delhi: Oxford University Press; 1990.
27. Coward HG, Kunjunni Raja K, editors. Encyclopedia of Indian Philosophies. Vol. 5: The Philosophy of the Grammarians. Delhi: Motilal Banarsidass; 1990.
28. Deshpande MM. The Meaning of Nouns: Semantic Theory in Classical and Medieval India. Dordrecht: Kluwer; 1992.
29. Bronkhorst J. Language and Reality: On an Episode in Indian Thought. Leiden: Brill; 2011.
30. Briggs R. Knowledge representation in Sanskrit and artificial intelligence. AI Magazine. 1985;6(1):32–39.
31. Ingerman PZ. "Pāṇini-Backus Form" suggested. Communications of the ACM. 1967;10(3):137.
32. Kak S. The Paninian approach to natural language processing. International Journal of Approximate Reasoning. 1987;1(1):117–130.
33. Bhate S, Kak S. Pāṇini and computer science. Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute. 1993;72:79–94.
34. Bharati A, Chaitanya V, Sangal R. Natural Language Processing: A Paninian Perspective. New Delhi: Prentice-Hall of India; 1995.
35. Bharati A, Sangal R. Parsing free word order languages in the Paninian framework. In: Proceedings of the 31st Annual Meeting of the Association for Computational Linguistics. Columbus; 1993. p. 105–111.
36. Hyman MD. From Pāṇinian sandhi to finite state calculus. In: Huet G, Kulkarni A, Scharf P, editors. Sanskrit Computational Linguistics. Berlin: Springer; 2009. p. 253–265.

37. Huet G. Formal structure of Sanskrit text: requirements analysis for a mechanical Sanskrit processor. In: Huet G, Kulkarni A, Scharf P, editors. Sanskrit Computational Linguistics. Berlin: Springer; 2009. p. 162–199.
38. Goyal P, Huet G, Kulkarni A, Scharf P, Bunker R. A distributed platform for Sanskrit processing. In: Proceedings of COLING 2012. Mumbai; 2012. p. 1011–1028.
39. Kulkarni A, Pokar S, Shukl D. Designing a constraint based parser for Sanskrit. In: Jha GN, editor. Sanskrit Computational Linguistics. Berlin: Springer; 2010. p. 70–90.
40. Kulkarni A, Shukla P, Satuluri P, Shukl D. How free is the free word order in Sanskrit. In: Kulkarni A, editor. Sanskrit Syntax. Providence: The Sanskrit Library; 2015. p. 269–304.
41. Begum R, Husain S, Dhawaj A, Sharma DM, Bai L, Sangal R. Dependency annotation scheme for Indian languages. In: Proceedings of IJCNLP 2008. Hyderabad; 2008. p. 721–726.
42. Bhatt R, Narasimhan B, Palmer M, Rambow O, Sharma DM, Xia F. A multi-representational and multi-layered treebank for Hindi/Urdu. In: Proceedings of the Third Linguistic Annotation Workshop. Suntec; 2009. p. 186–189.
43. Mishra A. Simulating the Paninian system of Sanskrit grammar. In: Huet G, Kulkarni A, Scharf P, editors. Sanskrit Computational Linguistics. Berlin: Springer; 2009. p. 127–138.
44. Scharf P, Hyman M. Linguistic Issues in Encoding Sanskrit. Delhi: Motilal Banarsidass; 2011.
45. Kadvany J. Positional value and linguistic recursion. Journal of Indian Philosophy. 2007;35(5–6):487–520.
46. Rajpopat R. In Pāṇini We Trust: Discovering the Algorithm for Rule Conflict Resolution in the Aṣṭādhyāyī [doctoral thesis]. Cambridge: University of Cambridge; 2022.
47. वाजपेयी किशोरीदास. हिन्दी शब्दानुशासन. काशी: नागरीप्रचारिणी सभा; 1958.
48. शर्मा देवेन्द्रनाथ. भाषाविज्ञान की भूमिका. दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन; 1966.
49. उपाध्याय बलदेव. संस्कृत साहित्य का इतिहास. वाराणसी: शारदा मन्दिर; 1958.
50. Kapoor K. Language, Linguistics and Literature: The Indian Perspective. Delhi: Academic Foundation; 1994.
51. Fillmore CJ. The case for case. In: Bach E, Harms RT, editors. Universals in Linguistic Theory. New York: Holt, Rinehart and Winston; 1968. p. 1–88.
52. Nāgeśa Bhaṭṭa. Paribhāṣenduśekhara. Kielhorn F, editor. Bombay: Government Central Book Depot; 1868.
53. Deshpande MM. Sanskrit and Prakrit: Sociolinguistic Issues. Delhi: Motilal Banarsidass; 1993.